छत्तीसगढ़ के प्रतिनिधि लोकवाद्य

लिकेश्वर वर्मा

संगीत के मूल तत्वों की दृष्टि से वाद्यकला यथार्थ में संगीत की पूर्णरूपेण प्रतिनिधि कला है। ध्वनि उत्पन्न होने के लिए कम्पन की आवश्यकता होती है तथा उस कम्पन में लय होनी चाहिए। बिना लय के संगीत की कल्पना ही नहीं की जा सकती। आचार्य शारंगदेव ने संगीतरत्नाकर में संगीत को परिभाषित करते हुए कहा है कि–"गीतं वाद्यं तथा नृत्तं त्रयं संगीतमुच्यते" अर्थात् गीत, वाद्य तथा नृत्य का सामूहिक नाम संगीत है। अर्थात् संगीत के अन्तर्गत ये तीनों कलाएँ मानी जाती है। इस प्रकार संगीत के मूल तत्त्व ही रूप-भेद तथा मात्रा-भेद से गीत, वाद्य तथा नृत्य के मूल तत्त्व कहे जा सकते हैं।

संगीत में प्रयुक्त उपकरणों को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–एक बाह्य, दूसरा आभ्यंतर। बाह्य उपकरण विशेष रूप से वाद्य संगीत में तथा आभ्यंतर कण्ठ संगीत में देखा जा सकता है। महर्षि भरत तथा उनके परवर्ती आचार्यों ने संगीत का उपकरण होने के कारण ही कण्ठ ध्वनि को वाद्यों के चतुर्विध वर्गीकरण के अन्तर्गत रखकर पंच महाध्वनियों का वर्णन किया है। नारदीय शिक्षा में इन पाँचों ध्वनियों के संबंध में कहा गया है–"एकं ईश्वरनिर्मितं नैसर्गिकम् अन्यच्चतुर्विधं मनुष्यनिर्मितं चेति पंचप्रकाराः महावाद्यानाम्।" भारतीय समाज में संगीत वाद्यों के स्थान एवं महत्त्व को वैदिक काल से ही देखा जा सकता है। उस काल में यज्ञादि अवसरों पर सामगान की परंपरा थी, जिसके साथ वीणा, वेणु और मृदंग की संगति होती थी। इसी तरह लौकिक संगीत के साथ भी विभिन्न प्रकार के वाद्यों का प्रयोग किया जाता था। भारतवर्ष ही ऐसा राष्ट्र है जहाँ सैकड़ों वर्षों पूर्व संगीत-वाद्यों का विधिवत वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया। सर्वप्रथम भरतमुनि प्रणीत 'नाट्यशास्त्र' में वाद्यों के वर्गीकरण का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है–

"ततं चौवावनद्धं च घनं सुषिरमेव च।

चतुर्विधं तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम्।।

ततं तन्त्रीगतं ज्ञेयंमवनद्धं तु पौष्करम।

घनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्यते।।"

भारतीय संगीतशास्त्र में उपलब्ध वाद्य-वर्गीकरणों में भरतमुनि द्वारा दिया वर्गीकरण ही सर्वाधिक प्राचीन, सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिकता से पूर्ण है, जिसका अनुसरण अल्प परिवर्तन के साथ प्रायः सभी परवर्ती विद्वानों ने किया है।

छत्तीसगढ़ का लोकसंगीत अत्यंत व्यापक, आकर्षक एवं समृद्धशाली है, जिन्हें अध्ययन की सुविधा के लिए तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है–जैसे-लोक नृत्य, लोकगीत तथा लोकवाद्य। उक्त तीनों विधाएं एक-दूसरे की पूरक हैं। छत्तीसगढ़ के पारंपरिक लोकसंगीत में लोकवाद्यों का प्रयोग या तो लोक नृत्य के साथ होता है या फिर लोकगीतों के साथ, अर्थात् लोकवाद्यों का स्वतंत्र वादन देखने को नहीं मिलता।

लोकवाद्य, लोकसंगीत का अभिन्न अंग है, जिसके प्रयोग से नृत्य तथा गीतों की प्रस्तुति अत्यंत रंजक, रोचक एवं प्रभावशाली बन जाती है। छत्तीसगढ़ के लोकसंगीत में परिस्थिति एवं भावनाओं के अनुरूप लोकवाद्यों का प्रयोग तथा विकास हुआ है। यहाँ अनेक अवसरों तथा त्यौहारों पर गाये जाने वाले गीत तथा नृत्यों के साथ विभिन्न प्रकार के लोकवाद्यों का प्रयोग होता है, लेकिन सभी गीतों के साथ वाद्य का प्रयोग हो यह आवश्यक नहीं है। छत्तीसगढ़ एक कृषि प्रधान राज्य है। खेतों में हल चलाता हुआ किसान, धान रोपती हुई महिलाएँ व खेती के अन्य कार्य में संलग्न पुरुष अपनी थकान मिटाने के लिए लोकगीत गाते हैं। अस्तु उस समय वाद्य का प्रयोग संभव नहीं होता।

छत्तीसगढ़ के लोकसंगीत में प्रयुक्त लोकवाद्यों को भी शास्त्राधारित चतुर्विध वाद्य-वर्गीकरण के आधार पर विभक्त किया जा सकता है-तत वाद्य, अवनद्ध वाद्य, सुशिर वाद्य तथा घन वाद्य। इन सभी वर्गों में वाद्ययंत्रों की संख्या बहुत अधिक है, साथ ही कई वाद्य अब प्रचार में नहीं है अथवा लुप्तप्राय हैं। छत्तीसगढ़ राज्य का विस्तार उत्तर की ओर कोरिया - बलरामपुर से दक्षिण में दंतेवाडा - सुकमा तक है। इतने बड़े क्षेत्र के लोकसंगीत में प्रयुक्त लोक वाद्ययंत्रों पर दृष्टिपात करना एक विशद विषय है, अस्तु प्रस्तुत आलेख को छत्तीसगढ़ के प्रतिनिधि लोकवाद्यों पर सीमित कर वाद्यों की सामान्य चर्चा की गयी है।

1. ढोलक–यह एक प्राचीन एवं लोकप्रिय वाद्य है, जिसका प्रयोग आज भी छत्तीसगढ़ के लोकगीतों तथा लोक नृत्यों में बहुतायत होता है। ढोलक बनाने की लिए बीजा, नीम, शीशम, खम्हार आदि लकड़ियों का उपयोग किया जाता है। इस दोमुखी वाद्य का दायाँ मुख का स्वर ऊँचा एवं बायाँ मुख का स्वर मंद में बोलता है। दोनों मुखों के स्वर को ध्यान में रखकर दायें के लिए पतली चमड़ी तथा बायें मुख के लिए मोटी चमड़ी वाली पल्ली लगायी जाती है, जिसमें अन्दर के भाग में स्याहीनुमा मसाला का प्रयोग भी किया जाता है। इस वाद्य का प्रयोग यहाँ के प्रायः सभी लोकगीतों, लोक नृत्यों, भजन आदि के साथ होता है।

2. मांदर–संगीत ग्रंथों के अनुसार मृदंग, मर्दल तथा मुरज तीनों एक-दूसरे के पर्याय हैं तथा इन्हीं में से मुरज अथवा मर्दल ही मांदर वाद्य का आदि रूप है। छत्तीसगढ़ में इस वाद्य के लिए मांदल, मादल आदि संज्ञाओं का भी प्रयोग होता है। यह विशुद्ध रूप से लोक अवनद्ध वाद्य हैं। छत्तीसगढ़ में निवास करने वाली बैगा, गोंड़, उरांव, घसिया (सईस), सतनामी आदि जातियों द्वारा प्रयुक्त लोकसंगीत में प्रयोग होने वाला एक प्रमुख वाद्य है। पारंपरिक रूप से यह मिट्टी से बनाया जाता है, परंतु आजकल विभिन्न लकड़ियों का भी मांदर तैयार किया जाता है। मांदर वाद्य के बायें मुख का व्यास लगभग 11 इंच एवं दाहिने मुख का व्यास लगभग 10 इंच होता है। क्षेत्र विशेष में इसका आकार छोटा-बड़ा देखने को मिलता है। छत्तीसगढ़ में इस वाद्य का प्रयोग करमा, पंथी तथा जसगीत आदि के साथ प्रमुखता से होता है।

3. टिमकी–यह मिट्टी से निर्मित बहुत ही छोटे आकार का एकमुखी वाद्य है, जो कटी हुई बडी गेंद की आकृति का होता है। इसके मुख पर बकरे की खाल मड़ी जाती हैं। चमड़े की ही पतली बद्धियों से जालदार नीचे गोल गुड़री लगाकर चमड़ा कसा जाता है। इसके मुख का व्यास लगभग 6–7 इंच होता है। छत्तीसगढ़

के गांडा जाति के लोग इस वाद्य को मुख्यतः ढोल, गुदुम, डफ, मोहरी आदि वाद्यों के साथ बजाते हैं। यह एक सहायक वाद्य है, जिसका प्रयोग मांदर के साथ अधिकतर होता है, इसलिए इसे मांदर की सहचरी भी कहते हैं। कहीं-कहीं इसे दमऊ के नाम से भी संबोधित किया जाता है। छत्तीसगढ़ के विवाह गीत में उस वाद्य का उल्लेख भी आता है जैसे–"बाजा रे बाजे दमऊ नइ ये तोर घर के दुवारी म समऊ नइ ये होई रे होई रे।"

4. सींगबाजा–सींगबाजा एकमुखी अवनद्ध वाद्य है, जिसे सींगबाजा, गुदुम, निसान तथा गंड़वा बाजा इत्यादि नामों से जाना जाता है। इसका प्रयोग विशेष रूप से विवाह के अवसर पर किया जाता है। सींगबाजा स्वतंत्र वाद्य है, लेकिन इसे दमऊ, दफडा एवं मोहरी के साथ लोकवाद्यों के समूह में बजाया जाता है। सींगबाजा नामकरण की पृष्ठभूमि में तथ्य यह है कि अतीत में इस वाद्य में दोनों ओर हिरण के सींग लगाकर उन्हें सजाया जाता था, जिससे वाद्य भारी हो जाता था अतः कालांतर में इस भारीपन को दूर करने के लिए सींग की जगह हल्के लोहे का प्रयोग होने लगा ।

5. दफड़ा–छत्तीसगढ़ के 'गांड़ा-बाजा' में बजने वाले वाद्यों में से एक वाद्य दफड़ा है। यह एकमुखी वाद्य है, जिसमें बकरे या भेंड की खाल से बनी पल्ली मढी जाती है इसका लगभग व्यास 16-20 अंगुल होता है। यह पीपल, खम्हार, डुमर अथवा बरगद की लकड़ी से निर्मित किया जाता है। डफ, ढफ, डफला, चांग आदि इसी जाति के वाद्य हैं। यह वाद्य विवाह, राउत नाच, जस-पचरा, गौरी-गौरा आदि अवसरों पर बजाया जाता है ।

6. नगाड़ा–इस वाद्य का प्रयोग छत्तीसगढ़ में अस्थायी रूप से होता है। प्रतिवर्ष बसंत पंचमी से फाग गाने का आरंभ होता है, जो होली के बाद रंगपंचमी तक चलता है। नगाड़ा का प्रयोग हमेशा जोड़ी में होता है, जिसमें से एक को 'तारी तथा दूसरे को 'गद' कहा जाता है। फाग गायन के साथ इसका प्रयोग किया जाता है।

8. चिकारा–छत्तीसगढ़ के लोकवाद्यों में अत्यंत प्राचीन वाद्य है। चिकारा सारंगी वाद्य की भांति बजाया जाता है। चिकारा का प्रयोग नाचा, भजन, लोककथा गायन आदि में प्रमुख रूप से किया जाता है। दादरा एवं कहरवा तालों के मध्य एवं द्रुत लयों में चिकारा वाय की धुन काफी हृदयस्पर्शी होती है। छत्तीसगढ़ में नाचा का प्राचीन रूप 'खड़े साज' में 'चिकारा' का प्रयोग अनिवार्यतः होता है, लेकिन खड़े साज का प्रचलन अब लगभग बंद हो जाने के कारण चिकारा का प्रयोग नहीं के बराबर है।

9. रुन्झू–छत्तीसगढ़ की देवार जाति के इस प्रमुख वाद्य को सारंगी के नाम से भी संबोधित किया जाता है। देवार एक घुमंतू जाति है। इनका कोई स्थायी निवास नहीं होता, बल्कि वे गाँव-गाँव घूमकर तथा अस्थायी निवास कर अपना जीवन-यापन करते हैं, उस दौरान वे गाँव-गाँव घूमकर लोककथा गायन करके अपना रोजी-रोटी चलाते थे। किसी समय यह वाद्य उनका भरण-पोषण का एकमात्र साधन था, किंतु वर्तमान में इसका प्रचलन बहुत कम हो गया है।

10. तमूरा–तमूरा को तम्बूरा तथा एकतारा भी कहा जाता है। इस वाद्य का नाम सुनते ही जनसाधारण के मन में नारद मुनि की परिकल्पना एकाएक परिलक्षित हो जाती है। छत्तीसगढ़ में तमूरा वाद्य का प्रचलन वर्षों से है। यहाँ इस वाद्य का प्रयोग पंडवानी लोककथा गायन के साथ होता है। तमूरा वाद्य के साथ लोकगायन करने वालों में पद्मश्री तीजनबाई के अतिरिक्त श्री पूनाराम निषाद, श्री झाडूराम देवांगन, श्रीमती ऋतु वर्मा आदि प्रमुख हैं।

11. करताल–यह एक प्राचीन घन वाद्य है। यह कठताल के नाम से भी जाना जाता है। करताल लकड़ी और पीतल के छोटे-छोटे गोल छल्ले से निर्मित होता है। लगभग 18 इंच लम्बा, 4 इंच चौड़ा और आधा इंच मोटा एक लकड़ी का टुकड़ा लेकर उसके बीच में तथा दोनों किनारों के समानांतर जगह छोड़कर चार-चार बड़े छिद्र बनाये जाते हैं, जो डेढ़-डेढ़ इंच के होते हैं। इस वाद्य का प्रयोग छत्तीसगढ़ में भजन-कीर्तन, जस-पचरा, फाग तथा विशेष कर पण्डवानी व अन्य कथागीतों के साथ किया जाता है।

12. मंजीरा–छत्तीसगढ़ के लोक घन वाद्यों में मंजीरा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका प्रयोग सहायक वाद्य के रूप में होता है। मंजीरा मूलतः कांस धातु का बना उत्तम माना जाता है, परंतु इसे पीतल, तांबा, जस्ता आदि धातुओं के मिश्रण से भी बनाया जाता है। मंजीरे के मध्य भाग में छिद्र किया जाता है, जिसके अंदर से रस्सी पिरोयी जाती है तथा अंदर की ओर ही रस्सी की एक छोर पर गांठ बांध दी जाती है। मंजीरा लोकवा पूरे भारत में अलग-अलग नामों तथा आकारों में पाया जाता है।

13. झांझ–झांझ प्राचीन वाद्य है, जो आकार में मंजीरे से बहुत बड़ा होता है। इसे भी पीतल के साथ जस्ता, तांबा, कांसा आदि अन्य धातु मिश्रित करके बनाया जाता है। झांझ ढोल, मांदर आदि वाद्यों के साथ बजने वाला सहवाद्य है। छत्तीसगढ़ में जस-पचरा, गौरा-गौरी, करमा, भजन-कीर्तन आदि में सहवाद्य के रूप में यह प्रयुक्त होता है। इसके अतिरिक्त छत्तीसगढ़ के कबीर पंथ में 'चौका' गायन के समय भी झांझ का प्रयोग करते हैं।

14. घुंघरू–संगीत ग्रंथों में क्षुद्रघण्टा अथवा क्षुद्रघण्टिका आदि नामों से उल्लेखित घुंघरू लोहा, कांसा, पीतल धातुओं से बना होता है, जिसका आकार बेर की भांति होता है। छत्तीसगढ़ में इसका वाद्य प्रयोग नाचा, गम्मत, नृत्य आदि में होता है। कुछ अवनद्ध वादक अपने हाथों इसे पहनकर मांदर, ढोलक तथा तबला आदि का वादन करते हैं।

15. बाँसुरी–प्राचीन काल से अपनी मधुरता के कारण सुशिर वर्ग के वाद्यों में बाँसुरी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानी जाती रहा है। यह भारतवर्ष के लगभग सभी अंचलों में सामान्य रूप से प्रचलित है। बाँसुरी को मुरली, बंशी, वेणु आदि नामों से भी संबोधित किया जाता है। छत्तीसगढ़ में निवास करने वाली राऊत जाति का यह प्रमुख वाद्य है। राऊत जाति भगवान श्रीकृष्ण को अपना इष्टदेव तथा पूर्वज मानते हैं। संभवतः यही कारण है कि गाय चराते समय वे बाँसुरी या बंशी बजाते हैं। दन्तेवाड़ा जिलान्तर्गत निवासरत दंडामी माड़िया जनजाति बाँसुरी का प्रयोग 'गवर नृत्य' में करते हैं। इनके अलावा परजा एवं भतरा जनजातियाँ भी बाँसुरी का प्रयोग करती हैं।

16. बाँस–छत्तीसगढ़ की राउत जाति का यह मुख्य वाद्य है। बाँस वाद्य को हमेशा जोड़ी में बजाया जाता है। बाँसगीत गाते समय एक या दो वादक बाँस बजाते हैं तथा एक रागी एवं दो या तीन गाने वाले होते हैं। बाँस वादक (बाँसखरी) बाँस का वादन तब तक करते रहते हैं जब तक कथा प्रसंग संपन्न न हो जाये। कथागीत शुरू होने से पहले बाँस वादक बाँस वाद्य के स्वर से लय बांधता है तत्पश्चात् उसी स्वर से गीत आरम्भ होते हैं। इन कथागीतों में पौराणिक या ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण होता है। 'बाँस' वाद्य को अगर छत्तीसगढ़ का मन्द्रतम स्वर में बजने वाला वाद्ययंत्र कहा जाये तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। इसे बजाने के लिए लम्बी साँस की जरूरत होती है।

17. मोहरी–सुधिर वर्ग के वाद्यों में छत्तीसगढ़ के सभी क्षेत्रों में प्रतिष्ठित मोहरी एक मांगलिक वाद्य है, जो भारतवर्ष के कई प्रांतों में अलग-अलग आकार-प्रकार एवं नामों से प्रचलित है। शहनाई वाद्य को मोहरी वाद्य का ही परिष्कृत रूप माना जाता है। छत्तीसगढ़ में मोहरी वाद्य विशेषकर गांडा बाजा के साथ विवाह के समय बजता है। इसके अलावा राउत नृत्य तथा अन्य पर्वों में भी मोहरी वाद्य देखने को मिलता है। आजकल नाचा के साथ-साथ रामायण मंडलियों द्वारा भी इस वाद्य का उपयोग किया जाने लगा है।

18. अलगोजा–यह छत्तीसगढ़ के अहीर जाति का एक सुषिर वाद्य है। जब संयुक्त रूप से एक साथ दो बाँसुरियों का वादन किया जाता है, तो उसे अलगोजा की संज्ञा से संबोधित किया जाता है। अलगोजा में दोनों बाँसुरियों की लंबाई समान होती है। आजकल आधुनिकता की दौड़ में गाँव में होने वाले पारंपरिक विवाह पूर्व की भांति नहीं है। आज से लगभग 20 से 30 वर्ष पहले अहीर जाति के विवाह में पैदल या बैलगाड़ी में बारात जाने की परंपरा थी, जिसमें बारात के सामने अलगोजा बजाते हुए अहीरों को देखा जा सकता था।

उक्त लोकवाद्यों के अतिरिक्त खंजेरी, मांदरी, ढोल, धनकुल, चटकोला, ताशा, दुदुतता, तामक इत्यादि अनेक पारंपरिक लोकवाद्य हैं। आज का युग वैश्वीकरण का युग है, जिसमें संपूर्ण विश्व के संगीत में कुछ न कुछ आदान-प्रदान अवश्य हुआ है। छत्तीसगढ़ के पारंपरिक लोकसंगीत में प्रयुक्त कई वाद्यों की जगह आज दूसरे प्रदेश के लोकवाद्य, कुछ शास्त्रीय संगीत के वाद्य तथा आधुनिक इलेक्ट्रॉनिक वाद्ययंत्रों ने ले ली है। उल्लेखनीय है कि एक समय विदेशी वाद्य कहलाने वाला हारमोनियम वाद्य तथा उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत का प्रमुख तालवाद्य, वाद्य तबला आज छत्तीसगढ़ के लोकसंगीत के अनिवार्य वाद्ययंत्र हैं।

वैश्वीकरण के अलावा लोकसंगीत के व्यावसायीकरण से भी लोकवाद्यों की बनावट, वादन विधि एवं उनके अनुप्रयोग पर व्यापक प्रभाव पड़ा है। ऐसे कई लोकवाद्य या तो समाप्ति की ओर हैं या उनकी जगह नये वाद्यों ने ले ली है। विद्वानों के अनुसार लोकसंगीत, शास्त्रीय संगीत की जननी है। कई राग-रागिनियों की रचना लोकधुनों से हुई है, इसी क्रम में शास्त्रीय संगीत में प्रयुक्त अनेक वाद्यों का आविर्भाव भी स्वाभाविक रूप से लोकसंगीत से ही हुआ होगा। छत्तीसगढ़ में नाचा-गम्मत की सुदृढ़ परंपरा है, जिसका मूल 'खड़े साज' में है। वर्तमान में नाचा के साथ-साथ व्यावसायिक सांस्कृतिक मंचों में बुलबुल तरंग, सिंथेसाइजर, ऑक्टोपैड, हारमोनियम तथा तबला आदि का प्रयोग होता है। हारमोनियम एवं तबला वाद्य लोक में ऐसे रच-बस गये

हैं, कि इनको लोकसंगीत से अलग नहीं किया जा सकता। कला की जीवंतता के लिए उसमें नये प्रयोग भी आवश्यक हैं। इसी क्रम में आजकल लोकसंगीत में हो रहे नये प्रयोग भी स्वागत योग्य हैं, बस लोकसंगीत की आत्मा को ठेस न पहुँचे।

लिकेश्वर वर्मा,

सहायक प्राध्यापक, संगीत विभाग, इंदिरा कला, संगीत विश्वविद्यालय,

खैरागढ़ (छ.ग.)